इकाई 18 आत्म-निर्णय का अधिकार

संरचना

18.1 प्रस्तावना

18.2 आत्म-निर्णय और राष्ट्रवाद

18.3 बाह्य आत्म-निर्णय और उपनिवेशवाद-उन्मूलन

18.3.1 संयुक्त राष्ट्र और आत्म-निर्णय

18.3.2 एशिया और अफ्रीका में उपनिवेशवाद-उन्मूलन

18.3.3 प्रजातीय समानता और आत्म-निर्णय

18.4 आत्म-निर्णय और गैर-उपनिवेशी समाज

18.4.1 आत्म-निर्णय जैसा कि उपनिवेशी साम्राज्यों/राज्यों के भागों पर यथा अनुप्रयुक्त

18.4.2 आत्म-निर्णय और बहु-संजातीय समाजः आंतरिक आत्म-निर्णय

18.5 सारांश

18.6 अभ्यास प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

पुस्तक 1 में कुछ इकाइयों में आपने तृतीय विश्व के देशों की महत्वपूर्ण विशेषताओं का अध्ययन किया है। इन देशों को अब "विकासशील देश" के नाम से संबोधित किया जाता है। तृतीय विश्व का बहुत बड़ा भाग कभी पश्चिमी यूरोपीय देशों - मुख्यतया ब्रिटेन, फ्रांस, बेलजियम, पुर्तगाल और नीदरलैण्ड के उपनिवेशी साम्राज्यों के अंग थे। उन उपनिवेशों में राष्ट्रवादी आन्दोलनों ने बीसवी शताब्दी में अपने यूरोपीय स्वामियों से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए आत्म-निर्णय के नारे का प्रयोग सफलतापूर्वक किया। परन्तु इससे काफी पहले, यूरोप में पुराने साम्राज्यों के भिन्न-भिन्न लोगों और भागों - ओट्टोमान, ऑस्ट्रो-हंगेरियनों और रूसियों ने स्वतंत्र राष्ट्र स्थापित करने के लिए आत्म-निर्णय के दावे किये थे।

इस इकाई के पहले भाग में हम इस अवधारणा के ऐतिहासिक अनुप्रयोग की, संक्षेप में, समीक्षा करेंगे। दूसरे भाग में, हम इस अवधारणा की व्याख्या में अंतर्निहित कठिनाइयों और विरोधाभासों का विश्लेषण करेंगे तथा उस तरीके का भी विश्लेषण करेंगे जिससे अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय और संयुक्त राष्ट्र ने उपनिवेशी और गैर-उपनिवेशी समाजों की इस समस्या का समाधान किया है। इस चर्चा के आधार पर, हम अवधारणा की उपयोगिता का मूल्यांकन, विशेषकर बदलती हुई अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों की पृष्ठभूमि के संदर्भ में करेंगे।

18.2 आत्म-निर्णय और राष्ट्रवाद

समाज विज्ञान विश्व कोश (Encyclopedia of Social Sciences) ने आत्म-निर्णय की व्याख्या इस प्रकार की है, "एक राष्ट्रीयता के सभी लोगों को अपने स्वयं के राज्य में अपना शासन स्वयं करने के लिए एक साथ रहने का अधिकार है।" इसलिए यह स्पष्ट है कि यह अवधारणा राष्ट्रवाद की अवधारणा पर स्थित है। राष्ट्रवाद में समुदाय की ओर से अपनी अलग पहचान के लिए स्वानुभूतिमूलक भावना और

स्व-शासन या स्वतंत्र होने की प्रेरणा या आकांक्षा अन्तर्निहित है। भाषा, धर्म, वंश या सांझे ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर पहचान हो सकती है और ये विशेषताएँ लोगों में उभय भावनात्मक बंधनों को सुदृढ़ बनाने में सहायक होते हैं। यह आधार काल्पनिक हो सकता है परन्तु बंधन वास्तविक होते हैं। इसलिए ऐण्डर्सन राष्ट्र को "काल्पनिक समुदाय" कहते है। 19वीं शताब्दी के अंत में और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में केन्द्रीय यूरोप के कई समुदायों में इन अभिलक्ष्यों ने बहुत अधिक अशान्ति उत्पन्न की और ऑस्ट्रो-हंगेरियन, ओट्टोमैन तथा रुसी साम्राज्यों के ढाँचे को दुर्बल बना दिया। यह कारक कम से कम अंशतः प्रथम विश्व युद्ध छिड़ने के लिए उत्तरदायी हैं। युद्ध समाप्ति के बाद आत्म निर्णय का वचन और संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति वूड्रो विल्सन के चौदह सूत्र इस समाधान के लिए थे। युद्ध के अंत में मित्र राष्ट्रों के राजनीतिज्ञों ने अनुभव किया कि यह समस्या जैसी सिद्धान्तों में वर्णित है, उससे भी अधिक जटिल है। यहाँ तक कि इस सिद्धान्त के क्रियान्वयन से कई समुदायों- जैसे यूगोस्लाविया, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, पोलैण्ड, लेटविया लिथूनिया, इस्टोनिया ने राष्ट्रीयता प्राप्त कर ली है परन्तु इससे समस्या का हल नहीं हुआ है। केन्द्रीय और पूर्वी यूरोप के विभाजन से स्वतंत्र राष्ट्रों में अभी भी इन नए राष्ट्रों की सीमाओं के अंदर उन लोगों की बहुत संख्या विद्यमान थी जिनके पड़ोसी राष्ट्र-राज्यों के साथ अधिक गहरे भावात्मक, जातीय, या भाषायी बंधन थे। उदाहरण के लिए, चेकोस्लोवाकिया में जर्मनियों, बाल्टिक राज्यों में रूसियों का भाग्य अभी भी विदेशी शासन से जुड़ा हुआ था और वे सभी असंतुष्ट है। यह स्थिति यदि हल नहीं हो सकती थी, फिर भी इसे कम करने के लिए इन राज्यों में संजातीय समूहों के अधिकारों पर उस समय सहमति की जा सकती थी जब लींग आफ नेशन्स की संधि का मसौदा तैयार किया जा रहा था। वास्तविकता यह है कि इसमें जनसंख्या का स्थानांतरण अंतर्निहित है और इसे "संजातीय सफाई" कहा जा सकता है, इसमें लोगों का ऐसा स्पष्ट विभाजन नहीं हो सकता है जिसे लोगों के सभी वर्ग संतुष्ट हो सके। यह समस्या 21वीं शताब्दी तक राजनीतिज्ञों को परेशान करती रही। हाल ही में, यूगोस्लाविया से बोसनिया - हेर्जेगोविना, स्लोवेनिया, क्रोशिया से पृथक होने के विकल्प और चेकोस्लोवाकिया के विभाजन से यह प्रमाणित हुआ। जहाँ तक यूरोप का सम्बंध है, इस कहानी का अंत नहीं है। चेचेन्या, बास्क, साइप्रस, उत्तरी आयरलैण्ड अभी अनसुलझे प्रश्न हैं और इनमें से अधिकांश भविष्य के गर्त में हैं। इस विषय पर अधिक आप बाद में इस इकाई में पढ़ेंगे।

18.3 बाह्य आत्म-निर्णय और उपनिवेशवाद-उन्मूलन

प्रथम विश्व युद्ध के बाद, राष्ट्रपति, विल्सन के चौदह सूत्रों में समाविष्ट वचन के बावजूद एशिया और अफ्रीका - ब्रिटिश, फ्रैंच, डच और पुर्तगाली के उपनिवेशी साम्राज्यों में लोगों पर आत्मनिर्णय के सिद्धान्त लागू नहीं किए गए। लींग ऑफ नेशन्स के प्रतिज्ञापन में केवल कहा गया, सदस्य "अपने नियंत्रण के अधीन देशीय निवासियों की न्यायसंगत व्यवहार की सुरक्षा का प्रबंध शुरु करने के लिए सहमत हुए।" वास्तव में, उनके अधिकांश नेताओं ने इसे उनके प्रति विश्वासघात समझा जब उन्होंने युद्ध के दौरान इस आधार पर अपने उपनिवेशी स्वामियों को भरपूर सहयोग दिया था कि युद्ध सफलता के साथ समाप्त होने पर उन्हें पर्याप्त पुरस्कृत किया जाएगा, यदि पूर्ण स्वराज्य नहीं दिया गया तो स्व-शासन दिया जाएगा। इसलिए, विशेषकर भारत में, जन आन्दोलन और शासकों से असहयोग आरंभ हुआ। यह द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भी जारी रहा।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, संयुक्त राष्ट्र के गठन से भी काफी पहले, ब्रिटिश प्रधानमंत्री, विस्टेन चर्चिल और यू. एस. राष्ट्रपति फ्रैंक्लिन डी. रुज़वेल्ट द्वारा जारी किया गया अटलांटिक चार्टर में आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का अस्पष्ट संकेत पाया गया और इसी के आधार पर मित्र राष्ट्रों ने अपने उद्देश्य

निर्धारित किए। उपनिवेशों में लोगों की सहानुभूति और सहयोग पाने की आवश्यकता महसूस की गई। यह कहा गया कि यू.एस. और यू.के. "ऐसी सरकार के स्वरूप को चुनने के लिए लोगों के अधिकार का सम्मान करते हैं जिसके अधीन वे रहना चाहेंगे, और वे यह देखना चाहेंगे कि उन लोगों को प्रभुत्ता सम्पन्न अधिकार तथा स्वशासन बहाल किया गया है जिन्हें बलपूर्वक इससे वंचित किया गया था।" (बाद में चर्चिल ने स्पष्ट किया कि इसका आशय उन लोगों से था जिन पर नाजियों द्वारा आक्रमण किया गया था) घोषणा की अस्पष्टता की झलक पश्चिमी यूरोपीय साम्राज्यवादियों, मुख्यतया ब्रिटेन और फ्रांस द्वारा प्रस्तुत अवधारणा के प्रतिरोध में दिखाई दी।

18.3.1 संयुक्त राष्ट्र और आत्म-निर्णय

संयुक्त राष्ट्र चार्टर का प्रारूप तैयार करते समय, इसके संस्थापकों की चिन्ता स्पष्टतः आत्म-निर्णय के प्रश्न की अपेक्षा शान्ति और सुरक्षा, राष्ट्रों की क्षेत्रीय अखंडता की पवित्रता से अधिक थी। इन चिंताओं का उल्लेख चार्टर में पहले किया गया है और आत्म-निर्णय का उसके बाद। बाद में आत्म-निर्णय का उल्लेख चार्टर में केवल दो स्थानों पर हुआ है। संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों में से एक उल्लेख इस प्रकार है "लोगों के समान अधिकारों और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के लिए सम्मान के आधार पर राष्ट्रों के बीच मित्रतापूर्ण संबंध विकसित करना" (अनुच्छेद 1.2)। इसका उल्लेख सिद्धान्त के रूप में भी मिलता है जो लोगों को सामाजिक और आर्थिक दशाओं तथा अधिकारों के विकास का आधार होना चाहिए। (अनुच्छेद 55) अब इस बात पर सहमति हुई है कि यहाँ शब्द "लोग" का संबंध उन लोगों से हैं जो अभिशप्त उपनिवेशी शासन के अधीन थे। व्यापक संदर्भ में चार्टर अध्याय XII, XIII और XI में न्यासी परिषद (ट्रस्टीशिप कॉउन्सिल) और अस्वशासी राज्य क्षेत्रों (नॉन सेल्फ गवर्निंग टैरिटैरीज़) के लिए प्रावधान करता है। शत्रु राष्ट्रों के राज्य क्षेत्रों उपनिवेशों के साथ राष्ट्र संघ (लीग ऑफ नेशन्स) के अधीन अधिदेशों को न्यास के रूप में शामिल किया गया और इसे प्रशासन का प्रभार दिया गया और इस का पर्यवेक्षण न्यासी परिषद को सौंपा गया। इसका उद्देश्य निवासियों की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और शैक्षिक प्रगति तथा स्वशासन और स्वतंत्रता के लिए प्रगामी विकास को बढ़ावा देना था। न्यासी परिषद को निवासियों से याचिकाएँ प्राप्त करने, प्रशासन प्राधिकारियों से रिपोर्ट लेने, जाँच करने और महासभा (जनरल असेम्बली) को रिपोर्ट करने की शक्तियाँ दी गई। 1950 में दय न्यास राज्य क्षेत्रों में से दो को छोड़कर 1970 तक सभी स्वतंत्र हो गए थे।

चार्टर का अध्याय XI उपनिवेशों पर घोषणा थी। इन उपनिवेशों को अस्वशासी राज्यक्षेत्र कहा गया। इसके अधीन सदस्य देश जो इन उपनिवेशों के प्रति उत्तरदायी थे, (पुर्तगाल को छोड़कर) "निवासियों के कल्याण के भरसक प्रयास की बाध्यता को पवित्र विश्वास के रूप में स्वीकृत करने और स्वशासन तथा स्वतंत्र राजनीतिक संस्थाओं का विकास करने" तथा यू. एन .को आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षिक दशाओं के बारे में सूचना देने के लिए वचनबद्ध थे। संयुक्त राष्ट्र ने 1946 में ऐसे राज्य क्षेत्रों की संख्या 74 बताई गई थी। स्वशासन की दिशा में प्रगति मॉनीटर करने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने स्वशासी राज्य क्षेत्रों पर समिति के रूप में शासन प्रणाली तैयार की। यूरोप में साम्राज्यिक शक्ति, विशेषकर फ्रांस और पुर्तगाल ने अपने बाहरी उपनिवेशों (जैसे अल्जीरिया और गोवा) को अपने राष्ट्रों के अभिन्न अंग मानने की रणनीति का अनुसरण किया। उन्होंनें अपने राष्ट्रिकों को उन राज्य क्षेत्रों में बसाया जो वहाँ के मूल निवासियों के साथ अपने विधानमंडलों में प्रतिनिधि थे। इस प्रकार तकनीकी दृष्टि से मूल निवासी 'प्रजा' नहीं थी बल्कि उन मेट्रोपोलिटन राज्यों के "स्वतंत्र" राष्ट्रिक थे। इन राज्य क्षेत्रों के प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र द्वारा विचार करने के किसी भी प्रयास का इस आधार पर विरोध किया जाता था कि यह चार्टर के अनुच्छेद 2(7) का उल्लंघन करता है।

18.3.2 एशिया और अफ्रीका में उपनिवेशवाद-उन्मूलन

उपनिवेशों को आत्म-निर्णय के बारे में चार्टर में त्रुटि को उस समय कुछ सीमा तक सुधारा गया, जब उपनिवेशों की स्वतंत्रता से संबंधित मुद्दे संयुक्त राष्ट्र के अंगों, विशेषकर महासभा के समक्ष आए। यहाँ पर इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि संयुक्त राष्ट्र के 27 संस्थापक सदस्यों में से तीन को उपनिवेशवाद का कुछ अनुभव था। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने अपने प्रारंभ से ही उपनिवेशवाद-उन्मूलन के पक्ष का समर्थन किया। महासभा में बार-बार बहुत भारी बहुमत से संकल्प पारित किए गए, इसके फलस्वरूप, उपनिवेशवाद-उन्मूलन के सिद्धान्त को और आत्म निरीक्षण के सिद्धान्त की भावना को भी वैधता का वातावरण प्राप्त हुआ। महासभा का 1960 में पारित प्रस्ताव 1514 इसका परिचायक है। इसे सर्वसम्मति से पारित किया गया। इसमें कहा गया था "सभी लोगों को आत्म-निर्णय का अधिकार है, इस अधिकार के आधार पर वे स्वतंत्रता से अपनी राजनीतिक प्रस्थिति निर्धारित करते हैं और अपना आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास स्वतंत्रतापूर्वक कर सकते हैं।" उसने संकल्प 1514 के क्रियान्वयन की जाँच करने के लिए एक विशेष समिति नियुक्त की। महासभा पर 1960 और 1970 के दशकों में यह दबाव बनाए रखा गया। गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों ने महासभा के अंदर और बाहर दोनों जगह उपनिवेशवाद-उन्मूलन की प्रकिया को अपना समर्थन जारी रखा। इस प्रकार गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों के वांगडुग सम्मेलन ने "लोगों को राष्ट्रों के आत्म-निर्णय के सिद्धान्तों को जैसे संयुक्त राष्ट्र चार्टर और उसके संकल्पों में घोषित किया है, पूर्ण समर्थन की घोषणा की।" गुट-निरपेक्ष राष्ट्रों के राजनीतिक समर्थन, सोवियत संघ द्वारा विद्रोहियों को दी गई सैनिक तथा आर्थिक सहायता और संयुक्त राज्य की अनिच्छा से दी गई सहानुभूति के फलस्वरूप अधिकांश अफ्रीकी उपनिवेशों ने 1960 और 1970 के दशकों में अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता जो उसकी स्थापना के प्रथम वर्ष में 50 थी, वह शीत युद्ध का समाप्ति पर बढ़कर 170 हो गई।

18.3.3 प्रजातीय समानता और आत्म-निर्णय

यदि न्यासी पद्धति और उपनिवेशवाद-उन्मूलन (अस्वशासी राज्य क्षेत्रों) आत्म-निर्णय के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र कार्यकलाप के दो तत्व थे तो इस अवधारणा से संबंधित तीसरा तत्व दक्षिण अफ्रीका, रोडेशिया (अब जिम्बावे) में प्रजातीय समानता के लिए कार्य कर रहा था। यद्यपि दक्षिण अफ्रीका स्वतंत्र देश था और वास्तव में, संयुक्त राष्ट्र का सदस्य भी था, रंगभेद की उसकी नीति का यह अर्थ था, कि अल्पसंख्यक श्वेत ही इस पर शासन करते थे और काले लोगों का विशाल बहुमत की सरकार में कोई भागीदारी नहीं थी। संयुक्त राष्ट्र में इस प्रश्न को उठाने वाला पहला देश भारत था। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के आंतरिक अधिकार क्षेत्र के खंड के आधार पर इसका विरोध करने का प्रयास किया गया था जिसके अनुसार किसी देश के आंतरिक मामलों में संयुक्त राष्ट्र हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। इन आपत्तियों के होते हुए भी, प्रश्न पर चर्चा की गई और 1946 और 1960 के बीच वर्ष-दर वर्ष संयुक्त राष्ट्र महासभा में 60 से अधिक बार नीति के निन्दा प्रस्ताव पारित किए गए। 1962 में महासभा ने यह सिफारिश करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया कि इसके सदस्य दक्षिण अफ्रीका से अपने राजनयिक संबंध और संचार समाप्त करे और इसके निर्यात का बहिष्कार करें। 1965 में दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध शस्त्र प्रतिबंध लगाने के बारे में सुरक्षा परिषद से संतुष्ट न होकर महासभा ने अध्याय VII के अधीन सुरक्षा परिषद को अपने अधिकार प्रयोग करने और देश के विरुद्ध प्रतिबंध लगाने का आग्रह किया। संयुक्त राष्ट्र से बाहर राष्ट्रमंडल के राष्ट्रों ने 1980 के दशक में यह मुद्दा उठाया और

दक्षिण अफ्रीका का बहिष्कार किया। विश्व के जनमत के दबाव में सुरक्षा परिषद ने मामले का संज्ञान लिया और राजनयिक तथा आर्थिक प्रतिबंध लगाए। देश के अंदर अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस ने अपने प्रतिरोध का स्तर बढ़ाया। संयुक्त दबाव में गोरे समुदाय को झुकना पड़ा और एक व्यक्ति एक वोट के सिद्धान्त के आधार पर लोकतंत्र स्वीकार किया।

रोडेशिया में भी स्थिति दक्षिण अफ्रीका के समान थी। रोडेशिया और नीयासा के ब्रिटिश उपनिवेश 1963 में भंग किए गए तथा दक्षिणी रोडेशिया का स्वशासी उपनिवेश बनाया गया। इसके 1961 के संविधान ने अनुपातिक मतदान प्रणाली व्यवस्था की। इसके परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक गोरों की सरकार बनी। 1962 में महासभा ने इसके निलम्बन के लिए कहा। संयुक्त राष्ट्र और राष्ट्रमंडल राष्ट्रों ने स्वतंत्रता के इस परिवर्तन के लिए ब्रिटेन को उत्तरदायी ठहराया। इसलिए जब इयानस्मिथ की अल्पसंख्यक सरकार ने स्वतंत्रता की एकपक्षीय घोषणा (UDI) जारी की तो अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा इसे मान्यता नहीं दी गई। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने अध्याय VII के अधीन अनिवार्य आर्थिक प्रतिबंध लगाए और 1968 में तेल पर प्रतिबंध लगाए। इस सबके फलस्वरूप, अंत में, जिम्बावे नाम से इसे स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित सरकार मिली।

इन मामले राष्ट्रीय पहचान के दावे की दृष्टि से आत्म-निर्णय के सिद्धान्त से सीधे जुड़े नहीं थे। फिर भी, वास्तविकता तो यह थी कि अधिकांश लोगों को पहचान का अंग ही नहीं समझा गया और इसमें भागीदारी प्राप्त करने के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ा और यही सिद्धान्त की प्रांसगिकता है। दक्षिणी रोडिशिया का मामला इसे और भी अधिक स्पष्ट करता है।

18.4 आत्म-निर्णय और गैर-उपनिवेशी समाज

उपनिवेशों की स्वतंत्रता इस बात का प्रमाण नहीं है कि आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की भूमिका समाप्त हो गई है। यह उन दो प्रकार के मामलों में यद्यपि प्रासंगिक कुछ संदिग्ध रहा है, जिन पर हम इस अनुभाग में विचार करेंगे। ऐसे प्रश्नों में एक प्रश्न यह उठता है कि इकाई क्या होनी चाहिए, जिस पर सिद्धान्त लागू करना उपयुक्त होगा? और इससे अधिक यह प्रश्न है कि क्या पड़ोसी राज्य/राष्ट्र जिसका यह कभी भाग था, इस मामले में उसके दावों में कोई औचित्य है?

18.4.1 आत्म-निर्णय जैसा कि उपनिवेशी साम्राज्यों/राज्यों के भागों पर यथा अनुप्रयुक्त

भारत के पूर्व रक्षा मंत्री, वी. के. कृष्णामेनन ने एक बार कहा था, "उपनिवेशवाद स्थायी आक्रमण है।" इसलिए जब 1960 के दशक के प्रारंभ में पुर्तगाली शासन से गोवा को मुक्त करने के लिए सैन्य कार्रवाई की गई थी और उसे भारत में मिला लिया गया था, इसे उपनिवेशवाद-उन्मूलन के अधूरे कार्य के रूप में व्यक्त किया गया था। उस समय गोवा पुर्तगाली शासन के अधीन था। संयुक्त राष्ट्र ने भारत की कार्रवाई का समर्थन नहीं किया परन्तु उसने राज्य क्षेत्र पर पुर्तगाल के दावे को भी अनुमोदन नहीं किया। पश्चिमी ईरेयन के लिए इंडोनेशिया के दावे भी इसी प्रकार के थे। प्रारंभ में इंडोनेशिया ने इस आधार पर जनमत संग्रह करना अस्वीकार कर दिया कि उस क्षेत्र पर उसका ऐतिहासिक दावा है। संबंधित दलों के साथ करार से मुद्दा सुलझा लिया गया और 1962 में क्षेत्र इंडोनेशिया को सौपा गया। बाद में संयुक्त राष्ट्र ने अपनी उपस्थिति से इस बात की पुष्टि की कि इस पर स्थानीय लोगों की सहमति की।

कई इन से भी अधिक जटिल मामले हैं, उनमें कुछ उपनिवेशवाद की विरासत है। आमतौर पर इनके प्रति अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय और खासतौर पर संयुक्त राष्ट्र का रुख ऐसा रहा है कि इसे दोनों का ही कहा जा सकता है। साम्राज्य निर्माण के दिनों के दौरान ब्रिटेन ने अर्जनटाइना तट से दूर फॉकलैण्ड को जीता था। यद्यपि ब्रिटिश गुयाना के ब्रिटिश उपनिवेश वेस्टइंडीज़ के द्वीप समूहों को स्वतंत्रता दी गई थी परन्तु फॉकलैण्ड उपनिवेश बना रहा। द्वीप समूह की बहुत कम आबादी है और ये मिश्रित मूल के हैं। अर्जनटाइना के एकतंत्रीय शासन की तुलना में इसने संभवतः हजारों मील दूर ब्रिटेन से अपना प्रशासनिक संबंध बनाए रखने को वरीयता दी। जब 1980 के दशक में अर्जनटाइना ने बल प्रयोग का प्रयास किया और बलपूर्वक द्वीप पर अधिकार करने का प्रयास किया। इसका परिणाम ब्रिटेन से युद्ध हुआ। अर्जनटाइना पराजित हुआ और परिस्थिति पूर्ववत बनी रही। क्या फॉकलैण्ड को स्थानीय लोगों की इच्छा के बावजूद अर्जटाइना का भाग माना जाए? संयुक्त राष्ट्र 1982 में इसका कोई स्पष्ट उत्तर न दे सका।

एक अन्य मामला रॉक आफ जिब्राल्टर का है। भौगोलिक दृष्टि से रॉक स्पेन का भाग है परन्तु 1730 में ब्रिटेन ने इस पर विजय प्राप्त की थी। स्पेन ने अपने राष्ट्र के अंग के रूप में इस पर दावा किया। परन्तु इसकी आबादी के कुछ ही हजार लोग ब्रिटिश शासन को चाहते थे। हाल ही में नवम्बर 2002 में अशासकीय जनमत संग्रह में 99 प्रतिशत लोगों ने स्पेन की प्रभुसत्ता को अस्वीकार किया।

इसी प्रकार के अन्य मामलों का उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है। 20वीं शताब्दी से पहले आयरलैण्ड ब्रिटेन का भाग था। यद्यपि आयरिश कैथोलिक धर्मविलम्बी हैं, उत्तरी आयरलैण्ड के अधिकांश लोग प्रोस्टेट हैं, उनमें से अधिकांश ब्रिटिश वंशज वहाँ बस गए। 19वीं शताब्दी में स्वतंत्रता के लिए आयरिशों के लम्बे संघर्ष के बाद 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में आयरलैण्ड को होमरूल और उसके बाद स्वतंत्रता दी गई थी। परन्तु, प्रोटेस्टेस्ट बहुत क्षेत्र होने के कारण द्वीप के उत्तरी भाग को यूनाइटेड किंगडम का भाग रखा गया था और अभी भी है। बहुत लम्बे समय से आयरलैण्ड ने द्वीप के ऐतिहासिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक संबंधों के कारण इस भाग पर दावा रखा हुआ है। प्रोटेस्टेण्ट बहुल उत्तरी भाग ने इसका विरोध किया। उत्तरी भाग के कैथोलिक अल्पसंख्यकों ने आयरलैण्ड रिपब्लिक आर्मी संगठित की और आयरलैण्ड गणतंत्र से अपने यूनियन के लिए सैनिक संघर्ष किया। इसके राजनीतिक अंग है, सिन्न फेइन। ब्रिटिश ने इस मामले में संयुक्त राष्ट्र की किसी भी भूमिका को स्वीकार नहीं किया। 1998 में गुड फ्राइडे एग्रीमेण्ट नाम के एक प्रकार के समझौते पर पहुँचे। करार उत्तरी आयरलैण्ड को स्वायतत्ता देता है, कैथोलिक अल्पसंख्यकों और इसके प्रतिनिधि सिन्न फेइन को राजनीतिक सत्ता में भागीदारी देता है। यह उत्तरी और दक्षिणी आयरलैण्ड के बीच सम्बंध भी बनाता है परन्तु आयरलैण्ड से मिलने का प्रश्न अभी अनसुलझा है।

पूर्व एशिया में ताइवान द्वीप (फॉर्मोसा) द्वितीय विश्व युद्ध से पहले चीन गणतंत्र का अंग था। 1949 के साम्यवादी विद्रोह के बाद नेशनलिस्ट पार्टी ने द्वीप में शरण ली। यू.एस. नौसेना द्वारा संरक्षित द्वीप मुख्य भूमि से पृथक रहा है और नेशनलिस्ट पार्टी की सरकार का शासन है। इसकी लोकतांत्रिक ढंग से निर्वाचित सरकार इस अलगाव से प्रसन्न है कि वहां के लोगों की उदार मान्यताओं, आर्थिक समृद्धि और रहन-सहन के उच्च स्तर के कारण उसके लोग संभवतः इस अलगाव को बनाए रखना चाहते हैं। इसके विपरीत चीन लोकतांत्रिक गणराज्य (मुख्य भूमि) अपने राष्ट्र के अभिन्न अंग के रूप में ताइवान पर दावा करता है। इस समय ताइवान की सरकार को मान्यता मिली हुई है और 30 देशों के साथ उसके राजनयिक संबंध हैं।

इन मामलों में जो प्रश्न उत्पन्न होते है, वे हैं क्या आत्म-निर्णय केवल क्षेत्र विशेष निवासियों की इच्छाओं का उल्लेख होना चाहिए या पड़ोसी देश से इसके ऐतिहासिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक संबंधों को भी प्रासंगिक समझा जाना चाहिए? यह तब और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जब यह उपनिवेशी विरासत होती है। क्योंकि बहुत से अवसरों पर सामरिक और आर्थिक कारणों से भाग को पृथक रखने में या अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने में उपनिवेशी शासकों की रुचि रहती है। क्या क्षेत्र के लोगों की इच्छा को ध्यान में रखे बिना ऐतिहासिक भूल को सुधारना उचित होगा? और इसे उपनिवेशवाद-उन्मूलन के अधिक व्यापक प्रक्रम का अंग समझा जाना चाहिए?

18.4.2 आत्म-निर्णय और बहु-संजातीय समाजः आंतरिक आत्म-निर्णय

आत्म-निर्णय की अवधारणा, यद्यपि, केवल उपनिवेशों या उपनिवेशवाद तक ही सीमित नहीं है। इसकी समसामयिक प्रासंगकिता भी है। जैसा कि यूरोप में, जिसका उल्लेख इस इकाई के अनुभाग 18.2 में किया गया है, आज भी कई ऐसे राज्य हैं जो स्वतंत्र राष्ट्रीय स्थिति प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। अतः अध्ययन के अनुसार शीत युद्ध के बाद की अवधि में राज्य निर्माण के लिए पचास से अधिक सशस्त्र संघर्ष हुए है। इनमें से कुछ शीत युद्ध समाप्ति से कुछ ही पहले हुए थे। इनमें अधिकांश यूरोप में थे। इनमें से तेरह किसी न किसी प्रकार के समझौते पर पहुँचे। इनमें से कुछ का उल्लेख संयुक्त राष्ट्र में भी हुआ। फिर, अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय और संयुक्त राष्ट्र की प्रतिक्रिया भी परस्पर विरोधी रही है। आइए, हम इनमें से कुछ मामलों पर विचार करें और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुप्रयोग में अंतर्निहित कारकों का विश्लेषण करें।

मौटे तौर पर, ये मामले दो श्रेणियों में आते हैं (क) राज्यों का विभाजन (या असफल) और (ख) भूतपूर्व उपनिवेश या राष्ट्र निर्माण में विफल मामले।

(क) हमने इस इकाई के अनुभाग 18.2 में उल्लेख किया है कि शब्द राष्ट्रत्व और वे कारक जिनके आधार पर निर्धारण किया जाता है, बहुत भ्रामक और परिवर्तनशील है। राष्ट्रत्व यह व्यक्तिसापेक्ष भावना होने के कारण निष्ठा के किसी अन्य रूप की भांति यह मात्रा (बहुत या कम) का मामला है। इसलिए राष्ट्र आपस में बहुत जुड़े हो सकते हैं जबकि अन्य में विभाजित करने वाली शक्तियाँ हो सकती हैं। जहाँ राष्ट्रीय पहचान के संबंध में असंगति (जैसे प्रजाति, भाषा, धर्म, इतिहास, आर्थिक दशाएँ आदि) मुख्य कारक हैं, अर्थात् यदि वे किसी भौगोलिक क्षेत्र में रहते हैं तब वह क्षेत्र 'राष्ट्रीय आत्म-निर्णय' के दावे का संभावित मामला हो सकता है। यदि हम इस तथ्य को ध्यान में रखकर विचार करें कि अधिकांश राष्ट्र विजातीय हैं, तो हमें इस तथ्य का महत्व महसूस करना चाहिए। 132 समकालीन राज्यों के अध्ययन के अनुसार 31 राज्यों (अर्थात 23.5 प्रतिशत) में सबसे बड़ा संजातीय समूह जनसंख्या का 50 से 74 प्रतिशत थी। 39 मामलों (अर्थात् 29.5 प्रतिशत) में सबसे बड़ा समूह जनसंख्या का आधा तक नहीं था। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि विखण्डनकारी प्रवृत्तियाँ व्यापक रूप में होती हैं।

हमने यह भी देखा है कि "राष्ट्रीय चेतना" मुख्यतया व्यक्तिपरक भावना है। इसका अभिप्राय है कि क्षेत्रीय रूप से केन्द्रित धार्मिक/भाषायी/संजातीय अल्पसंख्यक अनुभव कर सकते हैं कि उनके साथ भेदभाव किया जा रहा है। इस प्रकार की अनुभूति और इसके फैलने के परिणाम राष्ट्रीय आत्म-निर्णय का आह्वान हो सकता है। इसके अलावा, पहचान भावना की तीव्रता और समझ भी भिन्न भिन्न हो सकती है। यह संदर्भ पर भी निर्भर कर सकता है। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए कोसोवो के

यूगोस्लाव प्रान्त की भिन्न-भिन्न संजातीय दृष्टि से भिन्न-भिन्न लोगों का अल्बानिया के प्रति अधिक सजातीय संबंध रहा है। परन्तु यह केवल स्लोलोडेन मिलोसोविक की दमनकारी नीति और संघ (फेडरेशन) के आसन्न विभाजन था जो असंतोष को खुले रूप में लाया। पड़ोसी राष्ट्रों के खुले विद्रोह और नाटो ने सर्वियन शासकों को अपना उद्देश्य प्राप्त करने के सैनिक उपायों का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया।

इस प्रकार विखंडनकारी शक्तियाँ प्रछन्न अवस्था में रहती हैं और सही अवसर पर सक्रिय हो जाती हैं। यूरोप में सोवियत संघ/यूगोस्लाविया के विखण्डन के फलस्वरूप न केवल इसके संघीय राज्यों की पूर्ण स्वतंत्रता हुई बल्कि स्वतंत्रता के लिए संजातीय समूहों द्वारा इन सब्यों में से कुछ में सैनिक संघर्ष भी हुआ। इनमें प्रमुख राज्य हैं, रूस में चेचेन्या, और युगोस्लाविया में कोसोवा।

स्पेन में बास्क प्रान्त का सैनिक संघर्ष भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। नीचे तालिका में चल रहे संघर्ष पर कुछ जानकारी गई है जिनका सामना यूरोप में सफलता के साथ किया गया।

तालिका 18.1

देश	प्रस्थिति	परिणाम
यू.के. - उत्तरी आयरलैण्ड	1998 गुड फ्राइडे करार	स्वायतत्ता
स्पेन-बास्क प्रान्त	अभी जारी है	-
चैज़्क- स्लोवाकिया	1991 दो स्वतंत्र राष्ट्र का निर्माण	स्वतंत्रता
यूगोस्लाविया - बोस्निया - हेर्जेगोविना - स्लोवेनिया, क्रोएशिया	1994 डेटन करार	स्वतंत्रता
यूगोस्लाविया - कोसौवो	अभी जारी है	स्वायतत्ता या स्वतंत्रता
रूस - चेचन्या	अभी जारी है	
साइप्रस	संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में विचार विमर्श जारी है।	फिलहाल वास्तव में विभाजन पर औपचारि रूप से नहीं

उपर्युक्त सभी मामलों में जहाँ स्वतंत्रता या स्वायतत्ता के रूप में कुछ समझौता हुआ है, अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय/संयुक्त राष्ट्र ने किसी न किसी रूप में मध्यस्थता (यू.के., उत्तरी आयरलैण्ड - यू. एस. द्वारा) से शान्ति सेना (बोस्निया- हर्जेगोविना नाटो द्वारा) की तैनाती या शक्ति का प्रयोग (नाटो द्वारा कोसोवोम) तक हस्तक्षेप किया है।

18.4.2 आत्म-निर्णय और बहु-संजातीय समाजः आंतरिक आत्म-निर्णय

अधिकांश उपनिवेश और उनकी सीमाएँ इतिहास की दुर्घटनाएँ थी, उनकां निर्धारण साम्राज्यिक शक्तियों ने अपने अधिग्रहण की प्रक्रिया और समय द्वारा किया। इसलिए उपनिवेशी शासन की सम्पत्ति के अलावा मुश्किल से ही कोई चीज थी जो उनके लोगों में समान रूप से पाई जाती हो। अधिकांश

मामलों में उनकी आबादी में धर्म/भाषा या संजातीयता के अनुसार काफी भिन्नता थी। स्वतंत्रता के बाद जब उपनिवेशवाद का विरोध करने के संयोजनकारी कारक समाप्त हो गए तो कोई ऐसा सुदृढ़ बंधन नहीं रह गया जो लोगों एक साथ रख सके। इसके विपरीत, आर्थिक संसाधनों, शिक्षा और रोज़गार के लिए प्रतिस्पर्धा ने समाज में एक खुली विभाजक रेखा बना दी, जिसे माइरॉन वीनेर ने "दुर्लभता की राजनीति" कहा है। जहाँ नया राष्ट्र लोकतंत्र पद्धति की सरकार अपनाता है, दलगत अधिकार अपने संगठनों के निर्माण के लिए भाषा, धर्म, आदि के प्रति मूलनिष्ठा को सुविधाजनक आधार के रूप में पाते हैं। आगे ये विभाजन रेखाओं को अधिक तेज बनाती हैं। जहाँ पर ये रेखाएँ एक दूसरे से, विशेषकर क्षेत्रीय सीमाओं पर आपस में मिलती हैं, वहाँ स्वायतत्ता के लिए आवाज उठाना स्वाभाविक है। देश में प्रमुख समूह की प्रतिक्रिया सदैव सहानुभूतिपूर्ण नहीं होती हैं। वास्तव में, ऐसी आवाज को देशद्रोह के प्रमाण के रूप में संदेह की नजर से देखा जाता है। इन समूहों को इस तथ्य को ध्यान में रखे बिना देश विरोधी की संज्ञा दी जाती है कि राज्य को अभी राष्ट्र के रूप में उभरना है। दमन के कारण बाद में सशस्त्र संघर्ष आरंभ होता है। देशद्रोह के दोषारोपण से लक्ष्यपूर्ति की संभावना को बढ़ाती है। यदि उपनिवेशी शासन से स्वतंत्रता को संघर्ष "बाह्य आत्म-निर्णय" कहा जाता है तो पृथक होने (विभाजन) के संघर्ष को "आंतरिक आत्म-निर्णय" कहा जा सकता है। यदि इस अवधारणा का संबंध राष्ट्रवाद या राष्ट्र निर्माण से है तो यूरोप में मामलों पर इसके अनुप्रयोग की चर्चा पिछले भाग में की गई है। यद्यपि सभी तृतीय विश्व, अर्थात् भूतपूर्व उपनिवेशों पर यहाँ पर इसके अनुप्रयोग का वर्णन करना संभव नहीं है, केवल दो मामलों का उदाहरण चर्चा के लिए संक्षेप यहाँ पर लिया गया है। फिर भी, तालिका 8.2 से तृतीय विश्व में इस समस्या का महत्वपूर्ण पहलू स्पष्ट होगा।

तालिका 18.2

राष्ट्र	स्वायतता/ स्वतंत्रता माँगने वाले क्षेत्र	प्रस्थिति
इंडोनेशिया	एसेह (Aceh)	कम तीव्रता का संघर्ष
फिलीपींस	मिन्दानाआ	सशस्त्र संघर्ष
श्रीलंका	तमिल उत्तर	सशस्त्र संघर्ष/संधि वार्ता
ईरान-ईराक-टर्की	कुर्द	टर्की में सशस्त्र संघर्ष इराक में अनौपचारिक अलगाव स्थगित किया गया
नाइजीरिया	बियाफरा	स्वायतत्ता
म्यामार	कचिन-करेन जनजाति क्षेत्र	कम तीव्रता का सशस्त्र संघर्ष
चीन	तिब्बत	शांतिपूर्ण संघर्ष
भारत	उत्तर-पूर्वी जनजाति	कम तीव्रता का विद्रोह
इथोपिया	एरिट्रिआ	स्वतंत्रता
इंडोनेशिया	पूर्वी तिमूर	स्वतंत्रता

(ऊपर दी गई सूची बहुत विस्तृत नहीं है। इसमें उन मामलों को शामिल नहीं किया गया है जिनका दो राष्ट्रों के बीच विवादग्रस्त क्षेत्रों से सम्बंध हैं।)

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि इन क्षेत्रों में से अधिकांश में संघर्ष भिन्न भिन्न स्तरों पर जारी है। कुछ आन्दोलन तो स्वायतत्ता के लिए है या राजनीतिक पहचान के लिए है, ये संघर्ष यदि सफल नहीं हुए तो ये आत्म-निर्णय की माँग में बदल सकते हैं। इस बिन्दु पर दो मामलों में उदाहरण सहित चर्चा करेंगे।

क) **बांग्लादेश का आविर्भावः** हिन्दुओं के प्रभुत्व के भय के आधार पर 1947 में ब्रिटिश भारत के मुस्लिम बहुल प्रान्तों ने पृथक राज्य, पाकिस्तान बनाने का विकल्प किया। दो भाग, पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान (पूर्वी बंगाल) भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे से जुड़े हुए नहीं है। उन्हें भाषा, संस्कृति और अर्थव्यवस्था के आधार पर विभाजित किया गया था। स्वतंत्रता के बाद कुछ ही समय में देश सैनिक और अफसरशाही के संयुक्त शासन के अधीन गुजरा। यद्यपि पूर्वी पाकिस्तान की जनसंख्या देश की कुल जनसंख्या की आधी थी परन्तु इन दोनों में, यहाँ तक कि सेना में भी प्रतिनिधित्व बहुत कम था। इसलिए 1965 के भारत-पाक युद्ध के बाद पूर्वी पाकिस्तान ने अधिक स्वायतत्ता के लिए दबाव डाला। शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में आवामी लीग ने इस प्रयोजन के लिए शान्तिपूर्ण जन आन्दोलन आरंभ किया। 1970 के चुनाव में उसकी पार्टी को भारी मत प्राप्त हुए और राष्ट्रीय विधानसभा (नेशनल असेम्बली) में भी बहुमत प्राप्त किया। परन्तु पश्चिमी पाकिस्तान के राजनीतिक और सैन्य उच्च वर्ग ने सत्ता ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी और पूर्वी पाकिस्तान में आंतक और दमन का तांडव शुरु हुआ। संघर्ष ने सैनिक संघर्ष का रूप ले लिया, जो आवामी लीग ने अपनी सैनिक शाखा, मुक्ति वाहिनी संगठित की और भारत से सहायता माँगी। भारत-पाक युद्ध में पाकिस्तान की पराजय हुई और पूर्वी पाकिस्तान ने 1971 में "बांग्लादेश" के नाम से स्वतंत्र होने का निर्णय किया। यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि इस संघर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय की मूक सहानुभूति थी, परन्तु सामग्री की सहायता वह केवल भारत से ही प्राप्त कर सकता था। अपनी पराजय के बाद पाकिस्तान ने विभाजन स्वीकार किया और बांग्लादेश को अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय और संयुक्त राष्ट्र द्वारा मान्यता प्रदान की गई।

ख) **श्रीलंका और एल टी टी ईः** श्रीलंका को, तब सिलोन के नाम से जाना जाता था, ब्रिटिश द्वारा भारत और पाकिस्तान के साथ ही स्वतंत्रता दी गई। देश की आबादी मुख्यतया बौद्धों और सिंहली भाषियों (बौद्ध 63 प्रतिशत, हिन्दू 23 प्रतिशत, ईसाई 9 प्रतिशत और मुसलमान 7 प्रतिशत) की थी। द्वीप के उत्तरी और पूर्वी भागों में अल्पसंख्यक हिन्दुओं और मुसलमानों (सभी तमिल भाषी) की आबादी अधिक है। सीलोनीज पॉलिटिक्स के छात्र, मार्शल सिंगर के अनुसार "संजातीय समूहों की जो सीलोन में रहते थे, कभी भी सामान्य पहचान के भागीदारी नहीं हुए है। सिवाय इसके कि वे ब्रिटिश साम्राज्य की प्रजा के अंग थे। सीलोन के पूरे इतिहास में कोई सीलोनी राज्य नहीं था, सिवाय इसके कि सीलोन के "राज्य" की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन की अवधि के दौरान...। एक बार जब विदेशी शत्रु चला गया, द्वीप समूह में रहने वाले समूहों को एक सूत्र बांधने के लिए कुछ नहीं था। 1965 जब एस. डब्ल्यू. आर. डी. बंडारनायके के नेतृत्व में श्रीलंका फ्रीडम पार्टी सत्ता में आई, उसने राज्य के धर्म के रूप में बौद्ध धर्म को और सिंहली को राजभाषा घोषित करने की नीति अपनाई।

इसे तमिलभाषी हिन्दुओं के प्रति भेदभाव समझा गया। मुख्यधारा की दोनों सत्तारूढ़ पार्टियों - यू.एन.पी. और एल.एल.ई.पी. ने उत्तरी और पूर्वी प्रान्तों की स्वायतत्ता, उनका संघ और फेडरेशन के लिए उनकी पहले से चली आ रही माँगों को ठुकरा दिया। जब उत्तर में तमिलों द्वारा आन्दोलन चलाया

गया, उसे दबा दिया गया, एल.टी.टी. ई. (लिबरेशन टाइगर्स ऑफ ईलम) ने विद्रोह का मार्ग अपनाया। अब उसने उत्तर और पूर्व के लिए तमिलों की स्वतंत्रता की माँग की। 1987 में भारत के प्रधानमंत्री की मध्यस्थता के फलस्वरूप एक करार हुआ, इसमें भारतीय शान्ति सेना और स्वायतत्ता के लिए संधि वार्ता शामिल थी। परन्तु इससे शान्ति बहाल करने या समझौता करने में सफलता नहीं मिली और रक्तपात होते रहा। अंत में, नार्वे की मध्यस्थता से 2001-02 में युद्ध विराम और उसके बाद संधि वार्ता पर सहमति हुई।

तालिका 18.2 में दिए गए बहुत से क्षेत्रों में और भिन्न-भिन्न स्तरों के संघर्षों के उपर्युक्त दो मामले - कुछ सशस्त्र और कुछ शान्तिपूर्ण हुए हैं। राजनीतिक स्वायतत्ता या राजनीतिक पहचान के लिए ये आन्दोलन, यदि सफल नहीं हुए तो उन्होंने अपने लिए आत्म-निर्णय की माँग में बदल सकते हैं। वास्तव में, यह सब कुछ पहले ही हुआ है। इस प्रकार पूर्वी तिमूर जो इंडोनेशिया का भाग था, बांग्लादेश, पाकिस्तान का भाग था इथोपिया का भाग इरिट्रिआ था उन्हों ने पिछले कुछ दशकों में स्वतंत्रता प्राप्त की है।

18.5 सारांश

आत्म-निर्णय के अधिकार की अवधारणा पर चर्चा से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों के संदर्भ में कुछ विशेषताएँ प्रकट हुई और कतिपय प्रश्न उत्पन्न हुए हैं:

1) यह स्पष्ट है कि राष्ट्रवाद की संकल्पना के साथ इस आत्म-निर्णय ने उपनिवेशवाद-उन्मूलन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में साम्राज्य को बनाए रखना अलाभकर हो गया था। संभवतः यह महसूस करते हुए कि आर्थिक लाभ अन्य उपायों - जैसे असमान व्यापार, औद्योगिक और सैन्य प्रभुत्व, विचारों और विश्व माध्यम का प्रयोग - से प्राप्त किए जा सकते हैं। इस अनुभूति की पृष्ठभूमि में यही रहा होगा। परन्तु विश्वव्यापी लोकतंत्र और समानता के उदार विचारों, शिक्षा और आत्मानुभूति की प्रक्रिया की (उपनिवेशकों और उपनिवेशों दोनों) भूमिका को कम नहीं आँका जाना चाहिए। विचारों और सिद्धान्तों की कोई सीमा नहीं होती है तथा वे अपना प्रभाव कई तरीकों में नियंत्रित करते हैं। यही वे शक्तियाँ हैं जिन्होंने अपने आपको स्वयं संयुक्त राष्ट्र तथा आन्दोलनों, जैसे गुट निरपेक्ष तथा अफ्रीका नेशनल कांग्रेस के माध्यम से व्यक्त किया है।

   दूसरा कारक जिसने उपनिवेशवाद-उन्मूलन और आत्म-निर्णय की इस प्रक्रिया की गति तेज करने में सहायता की, वह थी सोवियत संघ द्वारा दी गई सहायता। आश्रित लोगों में साम्यवाद फैलने के खतरे ने पश्चिमी शक्तियों और संयुक्त राज्य को एशिया और अफ्रीका में नए राष्ट्रों के उदय को समर्थन देने/स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

2) आत्म-निर्णय की अवधारणा में राज्य क्षेत्रीय सीमाएँ परिभाषित करने के लिए कोई आधार निर्धारित करने का कोई प्रावधान नहीं है। इसके फलस्वरूप, दावों और प्रतिदावों के बीच संघर्ष हुआ। यह प्रश्न कि आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुप्रयोग के लिए क्या इकाई होनी चाहिए, अनुत्तरित रह गया है। यदि छोटी राज्य क्षेत्रीय सीमाएँ राष्ट्रीय पहचान की मान्यता के लिए स्वीकार की जाती हैं तो इसके फलस्वरूप आर्थिक दृष्टि से अव्यावहारिक राज्य हो सकते हैं जो बड़ी शक्तियों के लिए आर्थिक शोषण और रणनीतिक छल योजना के लक्ष्य बनकर रह जाते हैं।

ऐसा करते समय ऐतिहासिक, रणनीतिक और आर्थिक कारकों पर आधारित अधिक बड़े समाजों के दावों का मूल्यांकन करना भी आवश्यक है। इन्हें पूरी तरह अप्रासंगिक समझकर अस्वीकृत नहीं किया जा सकता है। उपनिवेशवाद-उन्मूलन के संदर्भ में सिद्धान्त का प्रयोग "बाह्य-आत्म-निर्णय" कहा जाता है।

3) बहु-सांस्कृतिक समाजों में आत्म-निर्णय के सिद्धान्त का प्रयोग करना बहुत जटिल है। इसे हमने आंतरिक आत्म-निर्णय कहा है। राज्य की सीमाएँ राष्ट्रीय जनचेतना की सीमाओं जैसी नहीं होती है। स्पष्ट है कि यह ऐसे समाजों में होता है जहाँ लोग स्वयं अनुभव करते हैं, उनके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जा रहा है, उनका शोषण हो रहा है और यह भावना समाज में पक्की हो जाती है। यह पहचान आधारित आन्दोलनों के विस्तार के लिए बहुत अच्छा सुगम धरातल प्रदान करता है। तब भाषा, धर्म, प्रजाति, संस्कृति या अन्य कोई भी कारक ऐसी पहचान के लिए एकत्र होने का स्थल बन सकता है। इससे भी अधिक क्या है, जिसमें पहचान कालांतर में या संदर्भ में तीव्रता से परिवर्तन आ सकता है। आज की अपेक्षाकृत कम अहानिकर पहचान भविष्य में आत्म-निर्णय के अधिकार की माँग करते हुए पूर्ण विकसित राष्ट्रवादी आन्दोलन बन सकता है। इस प्रकार के आन्दोलन कालांतर में समाप्त भी हो सकते हैं यदि ठीक समय पर उन्हें पूरा किया जाता है और उनकी आहत भावनाओं को शान्त करने के उपाय किए जाते हैं।

इस प्रकार स्वायतत्ता देना पहचान प्रतीकों से संबंधित माँगों को स्वीकार करने जैसी प्रक्रिया प्रायः वैध आशाओं को पूरा करते हैं। यू.के. ने जिस प्रकार स्कॉच/वेल्स पहचान की माँगों से सुलझाया है, इस सदंर्भ में इसे सीख के रूप में लिया जाना चाहिए। प्रयुक्त एक अन्य प्रक्रिया संघ बनाना है जो काफी सीमा तक पहचान की माँगों को पूरा करती है। कनाडा (क्यूबेक के मामले में) और भारत (झारखंड तथा उत्तर पूर्वी राज्यों, जैसे मिजोरम, नागालैण्ड के मामलों में) ने आत्म-निर्णय की माँगों का सामना करने के लिए ऐसा ही पथ अपनाया है।

आत्म-निर्णय के लिए आन्दोलन को बढ़ावा मिल सकता है और उसके अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ से द्वारा प्रभावित किया जा सकता है। इस प्रकार बहुत से आन्दोलन स्वतंत्र राष्ट्र निर्माण में चरम अवस्था में पहुँचे हैं क्योंकि उन्हें सैनिक, सामग्री और राजनीतिक समर्थन अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के अंदर से मिला है। बांग्लादेश, पूर्वी तिमूर, इरिट्रिआ, बोस्निया, हेर्जगोविना आत्म-निर्णय के सफल मामले हुए हैं और यह अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के माध्यम प्राप्त समर्थन से हुआ है। इसके विपरीत श्रीलंका में तमिलों, टर्की और ईराक में कुर्दो, रूस में चेचेन्या, नाइजीरिया में बियाफ्रा की माँगों को या तो हतोत्साहित किया गया था तो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की शक्तियों ने विरोध किया। वास्तव में, यदि बारीकी से इसका परीक्षण करें तो यह देखा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय सदा अलगाववादी आन्दोलन को समर्थन देने में अनिच्छुक रहे हैं। इसने आत्म-निर्णय की अपेक्षा राज्य क्षेत्रीय अखंडता का अधिक महत्व दिया है। वियाफ्रा, साइप्रस और यहाँ तक कि बांग्लादेश के मामले यह स्पष्ट दिखाई दिया। संयुक्त राष्ट्र महासभा का संकल्प 1514 भी कहता है कि यद्यपि "विदेशी अधीनता, प्रभुत्व और शोषण" चार्टर के विपरीत थे और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त देश की राष्ट्रीय एकता और देश की राज्य क्षेत्रीय अखंडता को आंशिक या पूरी तरह से भंग करना संयुक्त राष्ट्र (पैरा 6) के चार्टर के प्रयोजनों और सिद्धान्तों से मेल नहीं खाता है। यह विशेष रूप से इसलिए है, यदि प्रजाति, धर्म और रंग के किसी भेदभाव के बिना सभी लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार का शासन राज्य में है। तब आत्म-निर्णय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी लोगों को आंतरिक आत्म-निर्णय अर्थात् आधारभूत संवैधानिक स्वतंत्रता हो।

इसलिए आत्म-निर्णय जैसे लोगों की राष्ट्रीय आकांक्षाओं की तीव्रता निर्धारित दावों के प्रति दे । से प्राप्त प्रतिक्रिया और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का व्यवहार कारकों का संचित परिणाम है, इनमें से केवल एक स्थायी परिवर्तन लाने के लिए अपर्याप्त होगा।

18.6 अभ्यास के प्रश्न

1) आत्म-निर्णय की अवधारणा स्पष्ट कीजिए और उसके तथ्यों में अंतर बताइए।

2) बीसवीं शताब्दी में यूरोप में आत्म-निर्णय की प्रथा में अंतर्निहित समस्याओं का विश्लेषण कीजिए।

3) उपनिवेशवाद के विभिन्न मुद्दों की चर्चा कीजिए।

4) आत्म-निर्णय की अवधारणा और उसके अनुप्रयोग पर संयुक्त राष्ट्र की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

5) बहु संजातीय समाजों के लिए आत्म-निर्णय की अवधारणा के अनुप्रयोग में उसका समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।